इकाई 14 एक कवि के रूप में तुलसीदास

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 कविता के बारे में तुलसीदास के विचार
14.3 मर्मस्पर्शी जीवन प्रसंगों का चित्रण
14.4 तुलसी के काव्य में चित्रित विस्तृत जीवन फलक
14.5 तुलसी की काव्य कला
  14.5.1 काव्य भाषा
  14.5.2 छंद और संगीत
  14.5.3 काव्य का रूप विधान
  14.5.4 रामचरितमानस का रूप विधान
14.6 सारांश
14.7 अभ्यास/प्रश्न

14.0 उद्देश्य

तुलसीदास पर यह दूसरी इकाई है। पहली इकाई में आप तुलसी कालीन समाज, तुलसी की विचारधारा और तुलसी की राजनीतिक चेतना और राम राज्य की परिकल्पना जैसे विषयों का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में हम तुलसी की कविता का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़कर आप:

- कविता के बारे में तुलसीदास के विचारों से अवगत हो सकेंगे,
- तुलसी के काव्य में चित्रित विस्तृत जीवन फलक का अवलोकन कर सकेंगे,
- उनके काव्य में जीवन की विभिन्न और महत्वपूर्ण स्थितियों के चित्रण को रेखांकित कर सकेंगे ; और
- उनकी काव्य कला का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

तुलसीदास लोक कवि हैं। उन्होंने अपनी कविता जनभाषा (ब्रज, अवधी) में लिखी है। उनकी कविता में जीवन के अनेक प्रसंगों का विस्तृत और सूक्ष्म अंकन हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रामचरितमानस में अनेक मर्मस्पर्शी स्थलों का उल्लेख किया है। धनुषभंग होने पर परशुराम का आगमन और परशुराम-लक्ष्मण संवाद कवि की मौलिक कल्पना और सूझबूझ का प्रमाण है। इसी प्रकार के कई मार्मिक प्रसंग रामचरितमानास में भरे पड़े हैं। "वैराग्य संदीपनी" से लेकर 'हनुमान बाहुक' तक रचयिता के रूप में तुलसी एक से नहीं। उनकी काव्य-यात्रा में अनेक पड़ाव हैं, अनेक रंग हैं, अनेक छवियाँ हैं। तुलसीदास जनता के कवि हैं। उन्होंने दरबारी रचनाकारों और पतनशील सांस्कृतिक धारा का अनुसरण न कर भाषा-काव्य को समृद्ध किया है। उनकी कविताओं में ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी के साथ-साथ अरबी और फारसी के शब्दों का भी सृजनात्मक प्रयोग हुआ है। इसके कारण उनकी कविता जन-जन में लोकप्रिय हुई। इन्हीं पक्षों पर इस इकाई में विस्तार से विचार किया गया है और एक कवि के रूप में तुलसीदास की सफलताओं और असफलताओं को पहचानने की कोशिश की गई है।

14.2 कविता के बारे में तुलसीदास के विचार

तुलसीदास जन कवि थे। उन्होंने जनभाषा में कविताएँ लिखी हैं। संस्कृत जैसी देवभाषा और फारसी जैसी राजभाषा का उपयोग न कर अवध और ब्रज प्रदेश के ग्रामीण जनों की बोलियों में अपनी कविता

लिखने का उन्होंने निश्चय किया था। इसलिए प्रबुद्ध पंडित और ज्ञानी समाज से माफी माँगते हुए, क्षमा प्रार्थना करते हुए और अपनी सच्ची विनम्रता के साथ कहते हैं कि उनकी काव्यकृति में "जदपि कबित रस एकउ नाहीं", और वह "भनिति भदेस" अर्थात् एक गँवार की काव्य वाणी है। पर इसके बावजूद उनकी कविता गंगा नदी की पवित्र जलधारा के समान टेढ़ी-मेढ़ी चाल से हरहरा कर बह रही है -"गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की" (रामचरितमानस, बालकांड, पद संख्या 10)। यद्यपि उनकी "गिरा ग्राम्य" है (गँवारू भाषा), पर उसकी सुंदरता "मनि मानिक मुकुता छवि जैसी" है। भारतीय इतिहास के मध्ययुग तक जन-साधारण के दुःख दर्द, यथार्थ और संघर्ष का काव्य-विषय बनाने की परंपरा शुरू नहीं हुई थी। अतः तुलसीदास प्राकृत जनों के गुनगान अंकित नहीं करते, क्योंकि इससे तो सरस्वती पछताने लगती कि इस कवि की वाणी में साक्षात् मैं क्यों प्रगट हुई। पर श्रेष्ठ विचारों और आदर्श नायक रामचंद्र के चरित्र की कथाओं से मुक्तामणि के समान कविता लिखने का उनका प्रयत्न है।

गोस्वामी जी रामचरितमानस में अपने चरितनायक के आख्यान का आरंभ करने से पहले अपने मन को भरोसा देते हैं कि वाल्मीकि, व्यास तथा प्राकृत कवियों ने जो काव्य-परंपरा बनायी है, उसकी सहायता से वे काव्य रचना कर लेंगे -

चरन कमल बंदउं तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे।।
कलि के कबिन्ह करउं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा।।
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषां जिन्ह हरि चरित बखाने।।
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवउं सबहि कपट सब त्यागें।।
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू।।
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं।।
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अंदेसा।।
तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे।।
सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान।।
सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।।
करहु कृपा हरि जस कहउं पुनि पुनि करउं निहोर।।

अर्थात् मैं उन सब श्रेष्ठ कवियों के चरण-कमलों में अपनी वंदना अर्पित करता हूँ, वे मेरे सभी मनोरथों (काव्य रचना के संकल्प) को पूरा करें। कलियुग के उन कवियों को भी मैं प्रणाम करता हूँ जिन्होंने रघुपति की गुणगाथा का वर्णन किया है। जो बड़े बुद्धिमान प्राकृत (भाषाओं के) कवि हैं, जिन्होंने जनभाषाओं में हरिचरित्र का बखान किया है, जो ऐसे पूर्ववर्ती कवि हैं और भविष्य में होंगे, उन सबको निष्कपट भाव से मैं प्रणाम करता हूँ। आप सब मुझे वरदान दीजिए कि सज्जनों (साधु) के समाज में मेरी कविता का सम्मान हो क्योंकि बुद्धिमान लोग जिस कविता का आदर नहीं करते, उस कविता की रचना का व्यर्थ परिश्रम मूर्ख या बालबुद्धि रचनाकार ही करता है। कीर्ति, कविता और विभूति (अथवा संपत्ति) वही उत्तम है जो गंगा नदी के समान सबका हित करने वाली हो। राम की कीर्ति तो सुंदर है, पर मेरी कविता गँवारू भाषा में है (अथवा भद्दी है)। मेरी यही चिंता है, मेरा यह असमंजस है। परन्तु हे कवियो! आपकी कृपा से मेरी यह चिंता भी दूर हो जाएगी, इस असमंजस का हल भी निकल जाएगा क्योंकि रेशम की सिलाई टाट पर भी सुहावनी लगने लगती है। सुजान लोग उसी कविता का आदर करते हैं जो सरल हो, जिसमें निर्मल चरित्र का वर्णन हो तथा जिसे सुनकर शत्रु भी अत्यंत सहजता से वैर भूलकर सराहना करने लगते हैं। पर ऐसी कविता निर्मल बुद्धि के बिना रची ही नहीं जा सकती - दिक्कत यह है कि मेरी बुद्धि का बल बहुत ही थोड़ा है। इसलिए बार-बार निहोरा करता हूँ कि हे कवियो! आप कृपा करें जिससे मैं राम की महिमा (हरि यश) का वर्णन कर सकूँ।

प्रबुद्ध समाज में तुलसी अपनी कविता का आदर चाहते हैं। **"जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं"** जैसी उक्ति से स्पष्ट है कि बुद्धिमानों की बुद्धिमता को वे पैरों की जूती नहीं समझते। काव्य धार्मिक

पूजा-आराधना, श्रद्धा-विश्वास के कर्मकांड की पूर्ति के लिए मंदिर निर्माण नहीं है - गंगा नदी के समान सबका हित करने वाली भावधारा है। कविता के संबंध में तुलसी के इन विचारों पर ध्यान देना आवश्यक है। रामचरितमानस रूपी सरोवर के अवगाहन के लिए वे **"कबि कोबिद"** को आमंत्रित करते हैं और उन्हें "मानस मंजु मराल" की संज्ञा देते हैं अर्थात् विवेक और बुद्धिमत्ता के प्रतीक के रूप में हंस का स्वागत करते हैं - बुद्धिवाद के जूते को बाहर ही उतार देने का निर्देश नहीं देते। डॉ. लल्लन राय ने ठीक ही कहा है कि "तुलसी ने काव्य के संबंध में अपने लिए जो प्रतिमान निर्धारित किए थे उसमें समाजनिष्ठता सर्वोपरि है।" (तुलसी की साहित्य साधना, पृ. 39)।

काव्य के स्वरूप और लक्षण को परिभाषित करते हुए गोस्वामी जी रामचरितमानस के पहले श्लोक में ही कहते हैं -

वर्णनामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

मंगलाचरण के अंतर्गत ही भारतीय काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परंपरा से प्राप्त काव्यादर्श को स्वीकार करते हुए वे रस और छंद को काव्य के अनिवार्य उपादान के रूप में परिगणित करते हैं। पर इन उपादानों की सार्थकता तभी है जब मंगल भी हो, लोक-कल्याण की भावना भी हो; वस्तुत: यह लोकमंगल ही उनकी दृष्टि में काव्य का प्रयोजन है।

पर इस लोकमंगल के प्रयोजन को कविता के माध्यम से तभी चरितार्थ या उपलब्ध किया जा सकता है जब श्रेष्ठ विचारों की मूसलाधार वर्षा हो - "जौं बरषइ बर बारि बिचारू"। रूपक के माध्यम से काव्य की सृजन प्रक्रिया को तुलसी स्पष्ट करते हैं और इस क्रम में अपने काव्यदर्श को सटीक ढंग से प्रस्तुत कर देते हैं। यह रूपक इस प्रकार है -

हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।।
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुता मनि चारू।।

कवि हृदय रूपी सिंधु में ही कविता रूपी श्रेष्ठ मोती की उत्पत्ति होती है। पर इसके लिए पूर्व शर्त यह है कि श्रेष्ठ विचार रूपी जल की वर्षा हो। उपर्युक्त पद की सांकेतिक व्यंजनाओं पर अगर ठीक से ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि गोस्वामी जी कवि के हृदय की विशालता, उदारता और विपुलता आवश्यक मानते हैं - और सामाजिक जीवन के प्रेक्षणों से प्राप्त नैतिक आदर्शों और विवेकपूर्ण विचारों की धाराप्रवाह दृष्टि भी आवश्यक मानते हैं अन्यथा मति रूपी सीप में मोती की सृष्टि नहीं हो सकती।

14.3 मर्मस्पर्शी जीवन प्रसंगों का चित्रण

आप इस बात से परिचित होंगे कि हिंदी समालोचना में तुलसी साहित्य के विवेचन के संदर्भ में "मर्मस्पर्शी स्थलों की पहचान" का प्रश्न प्रबंधकार कवि की भावुकता और कलात्मक सामर्थ्य की निर्णायक कसौटी के रूप में मान्य रहा है। तुलसीदास पर आचार्य शुक्ल द्वारा लिखित जो निबंध "त्रिवेणी" में संकलित है, उसका प्रस्थान बिंदु इस कसौटी का सूत्रीकरण करता है-

"प्रबंधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं। रामकथा के भीतर ये स्थल अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं - राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वनगमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, भरत की प्रतीक्षा। इन स्थलों को गोस्वामी जी ने अच्छी तरह पहचाना है, इनका उन्होंने अधिक विस्तृत और विशद वर्णन किया है।"

(त्रिवेणी, पृ. 114)

कथा विन्यास के अंतर्गत धनुष-भंग होने पर परशुराम की आकस्मिक उपस्थिति और राम-लक्ष्मण से उनके संवाद में एक मनोरंजक नाटकीय स्थिति की कल्पना में निःसंदेह एक मौलिक सूझबूझ है। धनुष टूट चुका है। चारों तरफ आनन्द और हर्ष है। सखियाँ मंगलाचार के गीत शुरू कर देती हैं। सीता ने राम के गले में जयमाला पहना दी। सहसा कोलाहल सुनकर सीता सशंकित हुई - परशुराम प्रगट हुए - भृकुटि कुटिल, नयन क्रोध से लाल, वृषभ के समान कंधे, विशाल छाती और भुजाएँ, सुंदर यज्ञोपवीत, माला, मृगचर्म, वल्कल, तरकस, धनुष-बाण और कंधे पर फरसा। पूछते हैं - कहु जड़ जनक धनुष के तोरा? राम कहते हैं आपके दास ने तोड़ा। परशुराम कहते हैं - सहस बान सम सो रिपु मोरा। लक्ष्मा थोड़ा मुस्कुराये और बोले-

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाई। कबहुं न असि रिस कीन्हि गोसाई।।
एहि धनु पर ममता केहि हेतु। सुनि रिसाइ कह भृगकुल केतु।।

भृगुवंश की ध्वजा के समान अपनी प्रचंड क्रोधाग्नि लहराते हुए परशुराम बोले - अरे मूर्ख तू मुझे निरा मुनि समझता है। मैं तो क्षत्रिय कुल द्रोही के रूप में विश्वविदित हूँ - मेरे फरसे को देख। यह गर्भ के बच्चे का भी नाश करने वाला है। तुलसीदास द्वारा इस मुठभेड़ के क्षण में लक्ष्मण की प्रतिक्रिया का अंकन आपको अवश्य ही मनोरंजक प्रतीत होगा -

पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूंकि पहारू।।
इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनि देखि मरि जाहीं।।

लक्ष्मण के उत्तर परशुराम की क्रोधाग्नि के लिए आहुति के समान थे। परशुराम लक्ष्मण को तुरंत अपने फरसे से काटकर यमपुरी भेजने की धमकी देते हैं। इसी बीच राम हस्तक्षेप करते हैं और अपने अलौकिक अतिप्राकृतिक चमत्कारी करतब से परशुराम को शांत कर देते हैं। परशुराम कहते हैं -

अनुचित बहुत कहेउं अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।।

कथा-श्रोता और रामलीला के दर्शक के लिए सारा सस्पेंस, सारा औत्सुक्य और कुतूहल अस्वाभाविक ढंग से खत्म हो जाता है। इस दृश्य चित्रण पर आपकी प्रतिक्रिया क्या है? क्या आप यह महसूस नहीं करते कि कंट्रास्ट उपस्थित करने में, द्वन्द्व और नाटकीयता उत्पन्न करने में तुलसी की कला महान है, पर उसकी सृजनात्मक संभावना उनके विचार दर्शन के कारण अपनी पूर्ण परिणति तक पहुँचने के पहले ही कुंठित हो जाती है? कवितावली के बालकांड में भी यही स्थिति है।

जहाँ तक राम के वनवास का कथा प्रसंग है, "तुलसी की भावुकता" शीर्षक निबंध में आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तुत विशद विवेचन को आपने अवश्य ही पढ़ा होगा। कुछ याद कीजिए उन्होंने क्या-क्या कहा है। "अत्यंत सहृदयता से वर्णन", वनगमन के "दृश्य वर्णन में कुछ उठान दीखता", राम के वियोग में अयोध्या की विषादमग्नता का चित्रण - आचार्य शुक्ल द्वारा दिये गये इन सूत्रों के सहारे इस दृश्य-खंड के मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्रण पर संभवतः आप भी उतने ही मुग्ध होंगे।

राम के वनगमन के पहले दशरथ-कैकयी संवाद में अंतःपुर के दृश्य के अंतर्गत छल और निश्छलता, कपट और सत्य, प्रेम और द्वेष की द्वन्द्वभरी भावनाओं के संघर्ष को भी ध्यान से पढ़ना चाहिए। कैकेयी की कटु-कर्कशा और कुतर्की संवाद-भाषा प्रस्तुत करने में गोस्वामी जी को कोई हरा नहीं सकता। जनसाधारण की बातचीत में आपने नोट किया होगा कि लोग "रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरू बचनु न जाई।।" जैसी पंक्ति का लोकोक्ति की तरह अपने जीवन-व्यवहार में इस्तेमाल करते हैं। दरअसल यह कैकेई की उक्ति है जिसे उसने दशरथ को परास्त करने के लिए एक आदर्श मानदंड के रूप में पेश किया है। जब कैकेयी ने भरत के लिए राजसिंहासन और राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास मांगा तो राजा विदर्ण हो गए मानो बिजली ताड़वृक्ष पर बरबस टूट गिरी हो -

बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरू तालू।।

ऐसे मन:संताप के उद्विग्न क्षण में आपने कैकेयी की टिप्पणी अवश्य ही सुनी होगी - क्या भरत आपका पुत्र नहीं है? क्या मुझे आप बाजार से खरीदी औरत की तरह ले आये हैं? आपने वर देने के लिए कहा था। आप क्या समझ बैठे थे कि मैं वर के रूप में चबेना माँगूगी? दशरथ को प्रचंड कोध से जलती हुई कैकेयी ऐसी प्रतीत हुई मानो कोध रूपी तलवार म्यान से बाहर आ गई हो - कुबुद्धि उस तलवार की मूठ है, निष्ठुरता धार है और मंथरा रूपी सान पर रगड़ कर तेज की गई है - "लखी महीप कराल कठोरा।'' राजा हार जाते हैं और राम के वनवास का आदेश होता है। कौशल्या जब यह सुनती हैं तो इस भंयकर आघात के मारे सन्न रह जाती हैं।

राम, सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या से विदा हो जाते हैं। इस दृश्य का वर्णन तुलसी ने इस प्रकार किया है -

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अंधियारी।।
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी।।

अगर आप रामचरितमानस और कवितावली - दोनों के वनगमन दृश्य को मिलाकर पढ़ें तो कवितावली के अनेक पद आपको काव्य सौष्ठव की दृष्टि से सुंदर प्रतीत होंगे। उदाहरण के लिए कवितावली के ये पद -

फीर के कागर ज्यों नृप चीर, बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग लोगाई।।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिव लोचन रामु चले तजि बाप को राजु बहाउ की नाई।।
कागर कीर ज्यों भूषन-चीर सरीख लस्यो तजि नीरू ज्यों काई।।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभायँ सनेह सगाई।।
संग सुभामिनि, भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाउ की नाई।।

एक अदना से बटोही की नाईं राम अवध से विदा लेकर चल पड़े। राजवस्त्र और आभूषण तोते के जीर्ण पड़े पंखों के समान त्याग कर राम वैसे ही स्वाभाविक सौंदर्य से सुशोभित हो उठे जैसे काई हटने पर स्वच्छ जल। इस वर्णन को आप किस प्रकार विवेचित करेंगे? यही न कि लोकसामान्य भावभूमि पर साधारण मनुष्य के रूप में चित्रण किया जा रहा है?

आप जानना चाहेंगे कि राम के वनवास पर जनसाधारण खासकर ग्रामीण जनों की क्या प्रतिक्रिया होती है? संपूर्ण रामचरितमानस में ऐसे मर्मस्पर्शी कथा प्रसंगों के अवसर पर सीधे-सादे गाँव के लोगों की प्रति क्रियाओं का बड़ा भाव विह्वल चित्रण किया गया है-

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई।।
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाजु बिसारी।।

निरीह विपन्न ग्रामीण लोग सहृदय और उदार हैं। उनके पास जो भी है, उसे लेकर सत्कार करते हैं। स्त्रियाँ सीता की आवभगत करती हैं, परिचय प्राप्त करती हैं। राम का परिचय देने में सीता को कठिनाई है। तुलसी ने बड़ी सहजता से वर्णन किया है-

खंजन मंजु तिरीछे नयनि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि।
भई मुदित सब ग्राम बधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं।।

खंजन पक्षी के समान अपने नयनों को जरा तिरछा करके सीता ने इशारे से बताया कि ये मेरे पति हैं। ग्राम वधूटियाँ परम आनंदित हुईं मानो कंगालों को लूट के रूप में अपार धनराशि प्राप्त हो गई हो।

वनवास, पर्णकुटी, कंदमूल फूल और साधनहीन वन्य जीवन। ऐसे वर्णनों के बीच आपको तुलसी की संवेदनाओं का विस्तार दिखाई पड़ेगा।

लेकिन उधर भरत और कैकेयी के संवाद में गोस्वामी जी अपनी महान कलात्मक प्रतिभा का परिचय देते हैं। सब लोग मानो इस संवाद की प्रतीक्षा में हैं। खास तौर पर यह जानने के लिए कि देखें भरत क्या कहते हैं। तब तक भरत को कुछ भी पता नहीं है। ममहर से लौट कर आते हैं। पिता की मृत्यु, स्वयं को राजगद्दी और राम को वनवास की सारी कहानी उन्हें बतायी जाती है। कुतूहल, उत्कंठा और बेचैनी के साथ भरत की प्रति क्रिया जानने की बेसब्री है।

कैकेयी भरत से कहती है जो होना था हो गया, अब जी भरकर समाज सहित नगर का राज्य संभालो। भरत को ऐसा लगा मानो घाव पर किसी ने जलता हुआ अंगार डाल दिया। लम्बी साँस लेते हुए उन्होंने कहा -

जब तैं कुमति कुमत जियै ठयऊ। खंड खंड होई हृदय न गयऊ।।
बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।।

भरत के निश्छल, सत्यव्रती और पवित्र हृदय के ज्ञान, विवेक और स्वच्छ विचार को दर्शाने के लिए तुलसी भरत के मुँह से शापवाणी की वर्षा करवा रहे हैं। एक सामान्य आदमी दुष्टा स्त्री को जैसी गाली देता है, उसी तरह। भरत के चरित्र की उज्ज्वलता दर्शाकर तुलसी संयुक्त परिवार के अंदर भाईचारे का भावोत्कर्ष दिखलाते हैं। माता की कुटिलता से शत्रुघ्न भी इतने पीड़ित हैं। ज्यों ही मंथरा आती है शत्रुघ्न उसकी कूबड़ पर लातों से आघात करते हैं।

इसके बाद चित्रकूट में राम और भरत का मिलाप होता है। इस घटनावृत्त की कुंजी बतलाते हुए आचार्य शुक्ल ठीक ही कहते हैं कि यह "शील और शील का, स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है।" (त्रिवेणी, पृ. 116)। ज्यों ही लक्ष्मण ने बताया कि भरत मिलने आ पहुंचे हैं और प्रणाम कर रहे हैं - राम प्रेमपुलकित और अधीर होकर उठ खड़े - कहीं वस्त्र गिरा, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण -

उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।।

सीता हरण के बाद राम के वियोग दग्ध हृदय की व्याकुलता के वर्णन में भी गोस्वामी जी ने अपनी महान कलात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। इससे बढ़कर और क्या मार्मिक आघात हो सकता है। लता, पल्लव, विटप, खग, मृग, मधुकर श्रेणी से राम पूछते हैं क्या तुम लोगों ने मेरी सीता मृगनयनी को कहीं देखा है। 'अरण्य कांड' में इस दृश्य की मार्मिकता को तुलसी बहुत सँभाल नहीं पाते हैं। नारद से संवाद के बाद इस वृत्तान्त पर वही मायावादी टिप्पणी जड़ दी जाती है - युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है। हे मन तू उसका पतंगा न बन -

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।

इसके बाद लंका कांड का युद्ध वर्णन है। कल्पना प्रसूत इस कथाबंध में आहत लक्ष्मण की बेहोशी के वक्त राम की व्याकुलता का वर्णन हृदय स्पर्शी है। इसके बाद रणभूमि में विरथ रघुवीर से विभीषण का प्रश्न है कि शत्रु तो बलवान है और रथ पर सवार है। भला आप युद्ध कैसे जीतेंगे। रणभूमि में इस शंका के समाधान के लिए धर्मरथ का रूपक खींच कर राम विभीषण को आश्वासन देते हैं। धर्मरथ का रूपक तुलसी के विचार दर्शन को मूर्त रूप प्रदान करता है:-

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।।
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।।
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरतिवर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।।
अचल अमल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।।

अर्थात् इस धर्मरथ में शौर्य और धैर्य पहिये हैं, सत्य और शील दृढ़ ध्वजा-पताका हैं, बल, विवेक, दम और परोपकार - ये चार घोड़े हैं जो क्षमा, दया और समता की रस्सियों से रथ को जोड़े हुए हैं, ईश्वर-भजन सारथी है, वैराग्य और संतोष ढाल-तलवार हैं। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल और अचल मन तरकस के समान है। शम, यम और नियम बाणों के समान हैं। ब्राह्मण और गुरू का पूजन अभेद्य कवच है। इस धर्मरथ के अलावा और किसी उपाय से युद्ध जीता नहीं जा सकता। हे सखा विभीषण! ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास हो उसे कोई भी दुश्मन हरा नहीं सकता।

अन्यायी और कपटी शत्रु से युद्ध के लिए ऐसे धर्मरथ का रूपक खड़ा कर तुलसी फिर उसी अलौकिक अति प्राकृतिक चमत्कार का सृजन करते हैं जो वास्तविक चुनौतियों के विरूद्ध तैयारी की भावना को व्यर्थ कर देता है। आपको यह शंका अवश्य होगी कि लौकिक और अलौकिक के मिश्रण से रागात्मक संवेदना का ऐसा तनाव महाकाव्यकार क्यों उत्पन्न करता है? आध्यात्मिक-धार्मिक तात्पर्यों से रचित रूपकों की भरमार तुलसी में क्यों है? ऐसे प्रश्नों के उत्तर देते वक्त कुछ समीक्षक मध्यकालीन समाज के अंतर्विरोध की व्याख्या का ऐसा सांचा (हिंदू-मुस्लिम संघर्ष) प्रस्तुत करते हैं जिससे एक रचनाकार के नाते तुलसी की सामाजिक सौंदर्य-संवेदना का वस्तुगत तरीके से स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। एक रचनाकार के नाते तुलसी के मध्यकालीन बोध की यह सीमा भी थी और असंगति भी। बाल कांड में अवतारवादी जीवन-दर्शन के अंतर्गत धर्म की हानि और असुरों के अत्याचार से पृथ्वी की रक्षा के लिए परब्रह्म परमेश्वर के अवतार की कथा आती है। रावण को यह वरदान प्राप्त था कि उसकी मृत्यु मनुष्य के हाथों होगी। अत: नर-रूप में राम ने रघुकुल में जन्म लिया। धर्म की रक्षा, असुर समूह का विनाश और रावण का संहार दिखलाकर रामचरित को उत्कर्ष बिंदु तक पहुँचाने का क्रम पूरा हुआ। लंका कांड के अंत में इस प्रचंड युद्धलीला के दृश्य चित्रण के क्रम में गोस्वामी जी कुतूहलवर्द्धक अपशकुन संबंधी अंधविश्वासों की भी चर्चा करते हैं। अंत में कानों तक धनुष को खींचकर राम ने इकतीस बाण छोड़े - ऐसे बाण जो कालसर्प के समान थे - "रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस।" एक बाण ने रावण की नाभि के अमृतकुंड को सोख लिया, अन्य तीस बाणों से सिर एवं भुजाओं सहित उसका धड़ पृथ्वी पर नाचने लगा - "सिर भुजहीन रूंड महि नाचा।" धड़ प्रचंड वेग से दौड़ता है। फिर राम ने एक बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। मरते-मरते रावण की गर्जना सुनाई पड़ी -

गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी।।
डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर।।
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालि मर्कट समुदाई।।
मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा।।
प्रबिसे सब निषंग महँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई।।

रावण के गिरते ही पृथ्वी काँप उठी और राम के बाण रावण की भुजाओं समेत उसके रूंडमुंड को मंदोदरी के सामने रखकर फिर राम के तरकस में लौट कर समा गए। और अंत में राम का तेज प्रभु राम के मुख में समा गया - "तासु तेज समान प्रभु आनन।"

अवतारी मर्यादा पुरूषोत्तम की यह पराक्रमी नरलीला अलौकिक शक्ति से परिपूर्ण है और युद्धभूमि में अतिप्राकृतिक चमत्कारों से सबको अभिभूत कर लेती है। सत्य की विजय होगी - नरोत्तम राम की ही विजय होगी - सब कुछ पहले से निश्चित है। मध्यकालीन बोध की यही सीमा है। पौराणिक आख्यान परंपरा से तुलसी कोई प्रश्न नहीं पूछते, उसकी तार्किक आलोचना भी नहीं करते बल्कि उसे लोकविश्वास का हिस्सा बनाने में अपनी नयी भूमिका जोड़कर और भी प्रगाढ़ता प्रदान करते हैं। इस सवाल पर हो रही साहित्यिक बहस को जानने के लिए डॉ. रमेश कुन्तल की पुस्तक "तुलसी : आधुनिक वातायन से" अवश्य पढ़ें। उनकी मान्यता है "मिथकीय रामवृत्त के चरित्र अलौकिक और लौकिक दोनों शील धारण करते प्रतीत होते हैं। इसीलिए वे वाल्मीकि के नर-नरोत्तम राम न होकर नारायण (सगुण परब्रह्म) हो जाते हैं। अत: जिस तरह वाल्मीकि ने "रामायण" के पात्रों की वैदिक-अर्द्ध-पौराणिक व्याख्याएँ की हैं, उसी तरह तुलसी ने राम के मिथक प्रतीक (राम, रामवृत्त के पात्र, रामचरित) की "तत्कालीन एक पूर्ण वैष्णव व्याख्या" पेश की है।" (वही, पृ. 160)

आख्यान के सिर्फ हृदय विदारक घटना-प्रसंगों को चुनने की समस्या नहीं हैं। ऐसे प्रसंगों के चयन के पीछे अनिवार्य रूप में अंतर्निहित विचार-दृष्टि, युगबोध, लोकहृदय की मर्मज्ञता और ऐतिहासिक प्रेरणाओं के उपादान समवेत रूप में काव्य-विवेक का निर्माण करते हैं। मर्मस्पर्शी स्थलों की पहचान और उनके कलात्मक चित्रण का प्रश्न मूलत: काव्य-विवेक की विवेचना की मांग करता है।

आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि तुलसी से संबंधित समालोचनाओं में "मर्मस्पर्शी स्थलों की पहचान" वाली यह कसौटी किस सीमा तक चर्चा का विषय रही है? तुलसी साहित्य के अधिकांश मर्मज्ञों ने इसी कसौटी को अपनी साहित्यिक विवेचना का आधार बनाया है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, आचार्य रामचंद्र शुक्ल "त्रिवेणी" के ऊपर उद्धृत अनुच्छेद में ऐसे पाँच मर्मस्पर्शी स्थल बताए गए हैं।

वाल्मीकि, भवभूति आदि द्वारा वर्णित रामकथा में सीता के निर्वासन का प्रसंग गोस्वामी तुलसीदास ने न तो "रामचरितमानस" में लिया, न "बरवै रामायण" में और न "कवितावली" में। वाल्मीकि ने जितनी गहरी मार्मिकता और करुणा के साथ सीता के निर्वासन और वनवास का चित्रण किया है, उसके आगे राम का वनगमन एकदम बेजान और फीका लगता है। रामविलास शर्मा ने "आदिकाव्य' नामक निबंध में इस प्रश्न पर बेबाक टिप्पणी की है। "राम के साथ लक्ष्मण और सीता भी गए थे और इनके साथ रहने से राम को अयोध्या की याद बहुत न आती थी। लेकिन गर्भिणी सीता को धोखा देकर उनका वन में त्याग करना ऐसी हृदय विदारक घटना है जिससे राम के वनवास की तुलना की ही नहीं जा सकती। रामायण की इसी घटना को लेकर उत्तर रामचरित और कुन्दमाला जैसे महानाटकों की रचना की गई है। लेकिन सीता के त्याग में जिस क्रूरता का आभास आदिकवि ने दिया है, परवर्ती कवि उसे छू नहीं सके। गोमती के किनारे दुख से बेहोश होकर सीता के गिर पड़ने में जो स्वाभाविकता है, परवर्ती कवि अपने अलंकृत वर्णनों में उसे नहीं पा सके। सीता एक वीर नारी है।" (भाषा, युगबोध और कविता, पृ. 23-24)

आखिर तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञों ने रामचरितमानस में कथा के पुनर्विन्यास के इस पक्ष पर विचार क्यों नहीं किया? इसके पीछे गोस्वामी जी की विचार दृष्टि क्या थी? क्या स्त्री को बार-बार अज्ञ, "सकल कपट अवगुन खानी" और ताड़न की अधिकारिणी मानने वाली दृष्टि ही इस काट-छाँट के लिए जिम्मेदार नहीं थी? इन शंकाओं के संबंध में अनेक विद्वानों द्वारा यह समाधान सुझाया गया है कि चूंकि तुलसीदास राम का वर्णन एक अवतारी पुरुष के रूप में करना चाहते थे, अत: लंका में विजय और रावण के संहार के साथ उनके चरित्र का उत्कर्ष राम-राज्य की स्थापना में दिखाकर उन्होंने अपने युग को एक संदेश दे दिया है। उनका अभिप्रेत मात्र इतना ही था। आपको भी संदेह होगा - फिर

गोस्वामी जी बार-बार रामकथा के बखान की प्रतिज्ञा क्यों दोहराते हैं? सीता के निर्वासन और लवकुश के बिना यह कथा अधूरी रह जाएगी - क्या उन्हें इतना भी अनुमान न था?

इस चर्चा से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि रामकथा के पुनर्विन्यास के क्रम में "मार्मिक स्थल की पहचान" की असफलता ने रामचरितमानस की प्रभावोत्पादकता को घटाया है। कथाविन्यास का एक और प्रसंग जिसे गोस्वामी जी ने छोड़ दिया है, वह है शम्बूक वध। वाल्मीकि के राम एक शुद्र तपस्वी का वध करते हुए ज़रा भी नहीं झिझकते। इधर सिर कटा, उधर देवता फूल बरसाने लगे। भवभूति के राम हिचक, खीझ और किंचित करुणा के बावजूद यह कहकर कृपाण चलाते हैं कि जिस राम को गर्भिणी सीता के निर्वासन में उद्विग्नता नहीं हुई वह राम शम्बूक का वध करने में आगा-पीछा क्यों करें। "तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम द्वारा शूद्र तपस्वी का वध नहीं करवाया है। तुलसी के राम ब्राह्मणों का सम्मान करते हैं, वे शायद गुणी होने पर भी शुद्र का वध नहीं कर सकते। भक्ति आंदोलन वर्ण व्यवस्था को तोड़ता था।" (डा. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास पृ. 23)

वर्णाश्रम व्यवस्था में जो सबसे नीचे था, उस शूद्र जाति के दीन-दलित तपस्वी के वध से राम के गरीब निवाज, कृपालु और राम-राज्य के संस्थापक आदर्शवादी राजा के चरित्र की असंगति के चित्रण में अपने युगबोध और अपनी करुणा के लिए जो अवसर मिल सकता था, तुलसी उसे भी पहचान नहीं पाये।

14.4 तुलसी के काव्य में चित्रित विस्तृत जीवन फलक

गोस्वामी जी के काव्य की विवेचना के प्रसंग में तथा भक्त कवियों के बीच उनकी विशिष्टता के संदर्भ में आपने आचार्य शुक्ल का सूत्र वाक्य जरूर सुना होगा - **प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव, जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार, हिंदी के सभी कवियों में उनकी सर्वांगपूर्ण भावुकता, मानव प्रकृति के अधिकाधिक रूपों के साथ उनके हृदय का रामात्मक सामंजस्य**। काव्य-सृजन के इन विशिष्ट उपादानों की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए आचार्य शुक्ल ने कहा था - **"यदि कहीं सौंदर्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रणति, शील है तो हर्ष पुलक, गुण है तो आदर, पाप है तो घृणा, अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाखंड है तो कुढ़न, शोक है तो करुणा, आनन्दोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता, महत्व है तो दीनता, तुलसीदास के हृदय में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से विद्यमान है।" (त्रिवेणी, पृ. 122)**

रामकथा में अंतर्भूत संघर्षशील विराट जीवन का वैविध्य तथा मुगल शासन के अंतर्गत दुर्दशाग्रस्त वैषम्यपूर्ण जनजीवन - ये दोनों परस्पर घुलमिल गए हैं। आपने अवश्य ही ध्यान दिया होगा कि उपर्युक्त दोनों पहलुओं की परस्पर घुलनशीलता से तुलसी का काव्य इतना मार्मिक और भाव-व्यंजक हो गया है कि उत्तरी भारत के हिंदी भाषी अपढ़ जनगण तक सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, द्वेष-ईर्ष्या के क्षणों में तुलसी के वाक्यों को स्वयंसिद्ध लोकोक्ति के रूप में उद्धृत कर देते हैं ; कभी संत और असंत, सज्जन और दुर्जन का फर्क समझाते हुए, कभी खलों का स्वभाव बतलाते हुए, कभी अन्याय और अत्याचार का हवाला देते हुए, कभी नीति और अनीति, सदाचार और दुराचार की व्याख्या करते हुए। इसीलिए कहा जाता है कि तुलसी लोकप्रिय हैं, लोकहृदय के मर्मज्ञ हैं। कुछ लोग धर्म और भक्ति के लिए भी उन्हें याद करते हैं। हिंदू गृहस्थ परिवारों में रामचरितमानस के नियमित पाठ का भी चलन अभी समाप्त नहीं हुआ है। लेकिन तुलसी धर्म और भक्ति के मार्ग के पथ-प्रदर्शक के नाते बीसवीं सदी के श्रोताओं-पाठकों के लिए उतने प्रासंगिक नहीं हैं, जितने नैतिक लोकानुभव के सूक्तिकोश के रूप में। जब तक यह उत्पीड़नकारी वैषम्यपूर्ण समाज व्यवस्था है तब तक तुलसी काव्य की वैविध्यपूर्ण व्यंजना की शक्ति क्षीण नहीं पड़ेगी। इस व्यंजना में भक्ति, धर्म, नैतिकता, मानवीय मूल्य, संयुक्त परिवार की आचार संहिता, न्याय-अन्याय बोध सब कुछ समाहित रहता है। जीवन के विराट दृश्य-फलक पर तुलसी की दृष्टि की चर्चा आपको अपूर्ण प्रतीत होगी यदि आप कलियुग और राम राज्य के वर्णन को ध्यान से न पढ़ें, यदि आप दीन-दुःखी और दरिद्र जनसाधारण के प्रवक्ता और परामर्शदाता के रूप में गोस्वामी जी के विनय संबंधी पदों और गीतों की संवेदनशीलता में अंतर्निहित गहरी व्यंजना को न समझें। "वैराग्य संदीपनी" से "हनुमान बाहुक" तक एक रचयिता के रूप में तुलसी में हो रहे निरंतर

परिवर्तनों पर ध्यान अवश्य दें वर्ना उनकी कविताओं के बदलते हुए बहु-अर्थ और उनकी रंगारंग बहु-छवि को आप आत्मसात ही नहीं कर पायेंगे। वीतराग और वैष्णव हो जाने के बावजूद अपने युग के यथार्थ पर उनकी दृष्टि थी - अत: उनके विचार-संस्कार बाहर की दुनिया से टकरा रहे थे।

आप यह जरूर जानना चाहेंगे कि तुलसीदास के काव्य विकास की रूपरेखा क्या है? गोस्वामी जी के सृजनात्मक विकास के क्रम में "वैराग्य संदीपनी" के शांतिपद प्राप्त संत के रूप में आत्म-साक्षात्कार प्रस्थान बिंदु है, प्रौढ़ विकास का दूसरा पड़ाव राम-भक्ति में गहरी अनुरक्ति के फलस्वरूप "रामचरितमानस" है ; और तीसरा चरण है आत्मनिवेदन की व्याकुलता जिसकी परिणति "विनय पत्रिका", "कवितावली" और "हनुमान बाहुक" में होती है। पहले चरण में तुलसी बाह्य विश्व से अंत:क्रिया का समारंभ करते हैं। दूसरे चरण में वैष्णव आध्यात्मिकता और राम-भक्ति के माध्यम से अपने युग के पीड़ितों के एक नायक का अन्वेषण करते हैं जो लौकिक-अलौकिक दोनों हो; तीसरे चरण में पीड़ामय संसार के परिवेश में आत्मिक छटपटाहट और मोहभंग को पूरी तरह व्यक्त न कर पाने की अंतर्वेदना है।

आपने देखा कि तुलसी के रचना संसार के तीनों चरण बाह्य विश्व से अनुकूलित हैं। इसीलिए यह माना जाता है कि अपने युग और समाज के मुखर प्रवक्ता और प्रतिबिम्ब के रूप में भक्त कवियों के बीच तुलसी अद्वितीय है। उनके संपूर्ण काव्य कृतित्व में मानवतावादी नैतिकता ("परहित जैसा कोई पुण्य नहीं तथा परपीड़ा जैसा कोई पाप नहीं") अंत:सलिला के रूप में प्रवहमान है। रचयिता की यह नैतिकता उनके काव्य विवेक के रूप में सर्वत्र विद्यमान है।

आप पूछेंगे कि उनके दृष्टिफलक के अंतर्गत कौन-कौन सी चीजें हैं? जाहिर है कि प्रकृति, संपूर्ण देश, सृष्टि निर्माण का रहस्य, देव मंडल, भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, ज्योतिष, तत्कालीन समाज की अवस्था अर्थात् अकाल, दरिद्रता, शोषण, कपट, अत्याचार, कृषक जीवन, तत्कालीन निरंकुश सामंती व्यवस्था, राजा-प्रजा संबंधों की वास्तविकता और आदर्श राज्य का स्वरूप, खेत-खलिहान, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-नाले, पर्वत, वन्य जीवन, कोल-किरात-भील, नैतिक मूल्य, पाप-पुण्य बोध, वर्णाश्रम व्यवस्था, ब्राह्मण समाज, सज्जन-दुर्जन, छलकपट आदि न जाने कितनी चीजें उनके काव्य में समायी हुई हैं। राम कथा के विभिन्न पात्रों के चारित्रिक वैविध्य के अंकन द्वारा अपने दृष्टि क्षेत्र की व्यापकता और अपने ज्ञान प्रसार का तुलसी ने परिचय दिया है। सादृश्य विधान और प्रतीक चयन भी सर्वांगीण जीवन दृष्टि के परिचायक हैं। इसी के अंतर्गत अन्योक्तियाँ भी आती हैं। डॉ. रमेश शुक्ल मेघ ने तुलसी पर लिखित अपनी पुस्तकों में इनका व्यवस्थित अध्ययन किया है। जैसे कौओं को बड़े प्रेम से पालो पर क्या वे कभी मांस भक्षण छोड़ सकते हैं? मानसरोवर के जल में पली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है? कहीं पोखरे का क्षुद्र कछुआ भी मंदराचल उठा सकता है? संसार में जितने भी कामी और लोभी होते हैं वे कुटिल कौवे की तरह सबसे डरते हैं। राजा तड़पने लगे मानो मछली को माँजा व्याप गया हो। राजा के वचनों को कैकेयी टेढ़ा करके जान रही है जैसे "चलइ जोंक जल वक्र गति, जदपि सलिल समान।" नगर के लोग ऐसे व्याकुल हैं जैसे शहद छीन लिए जाने पर मधुमक्खियाँ। ऐसे न जाने कितने आलंकारिक वर्णन हैं जो मूलत: रचनाकार के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और व्यापक दृष्टिफलक का परिचय देते हैं।

14.5 तुलसी की काव्य कला

अभी तक आपने तुलसी के काव्य में आए मर्मस्पर्शी स्थलों, तुलसी काव्य में चित्रित जीवन और कविता के बारे में तुलसीदास के विचार से अवगत हो चुके हैं। अब हम तुलसी की भाषा और रूप विधान की चर्चा करने जा रहे हैं।

14.5.1 काव्य भाषा

तुलसी की सृजनशील काव्य कला की महानता को समझने के लिए सबसे पहले इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित करने की जरूरत है कि उन्होंने संस्कृत और फारसी की दरबारी काव्य परंपरा और लक्षण

ग्रंथों को तिलांजलि देकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के अभ्युदयकाल की नवीन जातीयता के उन्नयन को ऐतिहासिक कार्यभार के रूप में स्वीकार किया। दरबारी रचनाकारों और अपने युग के पंडितों की पतनशील सांस्कृतिक धारा का अनुसरण न कर तुलसी अन्य भक्तिकालीन कवियों की तरह भाषा काव्य को समृद्ध करने का निर्णय करते हैं। अपने युग के जनसाधारण की सांस्कृतिक आकांक्षा और सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति के दायित्व को एक चुनौती की तरह लेकर वे खुल्लम-खुल्ला नई धारा के सहयात्री बन गए। इस प्रश्न पर निर्णय में उनकी युक्ति भी गौर करने लायक है -

का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाँच।।

सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम नितप्रति व्यवहार की टकसाल में ढली हुई जनभाषा ही हो सकती है - ठीक वैसे ही जैसे शीतकाल में कंबल ही काम आता है, रेशमी वस्त्र नहीं। "भाखा बहता नीर" जैसी उक्ति के द्वारा कबीर ने संस्कृत के विरूद्ध जो तर्क दिया था, तुलसी उसी तर्क के आधार पर अपना भी निर्णय बतलाते हैं। भक्तिकालीन अन्य कवियों की तरह गोस्वामी जी को भी पंडितों के द्वारा किये जा रहे उपहास और व्यंग्य की चिंता नहीं थी।

मध्यकालीन सामंती समाज के सांस्कृतिक रूढ़िवाद और पतनशील मूल्य व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष का जो व्यापक आंदोलन मराठी, बंगला, उड़िया, असमिया समेत सभी जनभाषाओ में चल रहा था, तुलसीदास उसी आंदोलन के एक अंग थे। डॉ० राम विलास शर्मा मानते हैं कि इस आंदोलन ने सामंती बंधनों की जकड़बंदी के बरक्स भक्त कवियों के लिए **"व्यक्तित्व की सापेक्ष मुक्ति"** का द्वार उन्मुक्त कर दिया :

"सामंतवाद ने मनुष्य के व्यक्तित्व को अनेक बंधनों में जकड़कर उसके विकास को रोक दिया था। जाति (कास्ट), धर्म, सम्प्रदाय, सामाजिक आचार-विचार की शृंखलाओं में बंधकर मनुष्य का यह व्यक्तित्व स्वाधीन विकास के लिए तड़प उठता था। बिना इस व्यक्तित्व को स्वच्छंदता दिए हुए, बिना मुक्त आकाश में उड़ान भरे हुए काव्य में गेयता उत्पन्न नहीं हो सकती। ब्रजभाषा काव्य में जो अभूतपूर्व गेयता उत्पन्न हुई है, उसका सबसे बड़ा कारण इसी व्यक्तित्व की सापेक्ष मुक्ति है। सापेक्ष मुक्ति इसलिए कि सामाजिक बंधनों से यह पूर्ण मुक्त नहीं थी।" (भाषा, युगबोध और कविता, पृ. 48)

डॉ० रामविलास शर्मा का यह उद्धरण "मध्यकालीन हिंदी कविता में गेयता" शीर्षक जिस निबंध से लिया गया है, उसी में आगे चलकर तुलसी काव्य की गेयता - चाहे वह अवधी में लिखित हो या ब्रजभाषा में - का उपयुक्त विवेचन किया गया है। इस दृष्टि से हिंदी भाषी जनता द्वारा रामचरितमानस का गाया जाना - एक प्रबंध काव्य में गेयता के गुण उपलब्ध करना निश्चित रूप से तुलसी की महान उपलब्धि थी।

भाषा में लिखने के निर्णय से तुलसी को लोक-संस्कृति और जनसाधारण की दैनंदिन जीवनधारा में कलात्मक साधनों की अक्षय निधि प्राप्त हो गई। भारत के विभिन्न जनपदों में प्रचलित लोक-संस्कृति के विभिन्न रूपों, संस्कार गीतों, पर्व-त्योहार और विभिन्न ऋतुओं के लोक गीतों से गोस्वामी जी को वे छंद प्राप्त हुए जो अपभ्रंश काव्यों में भी व्यवहृत होकर निखर चुके थे। उपमान, रूपक, प्रतीक, बिम्ब, मुहावरे, लोकोक्ति तथा दृष्टान्त भी इसी लोक-संस्कृति और ठेठ ग्रामीण जीवन से लिए गए हैं।

शब्द-चयन पर भी तुलसी की दृष्टि सांस्कृतिक संकीर्णतावाद से मुक्त थी। इस प्रसंग में प्रोफेसर लल्लन राय ने बताया है - **"भाषा के संबंध में तुलसी की एक अन्य विशेषता है, मुक्त रूप से दूसरी बोलियों और भाषाओं से शब्द ग्रहण। इसमें ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी तथा कुछ नितान्त स्थानीय शब्दों के साथ अरबी और फारसी भाषा के शब्द भी आ जाते हैं। तुलसी ने अपनी रचनाओं में इतने अधिक अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है, जितना शायद हिंदी के किसी भी पुराने या आधुनिक कवि ने नहीं किया।" (तुलसी की साहित्य साधना, पृ. 144)**

भारतीय वाङ्मय और विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों से शब्द-चयन की उन्मुक्तता के कारण ही प्रसंगानुकूल भाषा शैली की विविधता विकसित करने में तुलसी अद्वितीय हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का ध्यान गोस्वामी जी की इस विशेषता की ओर गया था। उनकी टिप्पणी है- **"गोस्वामी जी ने इस बात का भी ध्यान रखा है कि किस स्थल पर विद्वानों या शिक्षितों की संस्कृत मिश्रित भाषा रखनी चाहिए और किस स्थल पर ठेठ बोली। घरेलू प्रसंग समझकर कैकेयी और मंथरा के संवाद में उन्होंने ठेठ बोली और स्त्रियों में विशेष चलते प्रयोगों का व्यवहार किया है।"** (हि.सा.इ., पृ. 131)

अपने उद्भव काल से ही कविता मुख्यत: श्रव्य विद्या है। भक्तिकालीन कवियों के काल में भी यह मुख्यत: श्रव्य विद्या ही थी। इसीलिए महान कलाकार की काव्य कला की कसौटी के अंतर्गत इस बात की माँग होती थी कि रचनाकार भाषा के ध्वनि प्रवाह और गति को पहचाने। रचना की श्रव्यता के लिए यह आवश्यक माना जाता है। इस कसौटी पर खरा उतरने वाला काव्य जन-जन का कंठहार बन जाता है और सदियों तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोकस्मृति में अक्षुण्ण पड़ा रहता है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी गोस्वामी जी के काव्य की इस विशेषता का विवेचन करते हुए कहते हैं - **"तुलसी की पंक्तियाँ लोगों को बहुत याद हैं। वे उत्तरी भारत के गाँवों, पुरबों, खेतों, खलिहानों, चरागाहों, चौपालों में दूब, जल, धूल, फसल की भाँति बिखरी हैं - इसे कहना अनावश्यक है। अवश्य ही इसका कारण उन पंक्तियों की संदर्भवत्ता और मार्मिकता है, लेकिन इसमें तुलसी की पंक्तियों के ध्वनि प्रवाह का भी बहुत योगदान है। तुलसी की पंक्तियों में वह रपटन और फिसलन है कि उनका एक शब्द याद पड़ जाए तो पूरी पंक्ति अपने आप ही स्मृति में उदित हो आती है। इसका कारण है पंक्तियों में प्रयुक्त शब्दों की ध्वनिमैत्री।"** (लोकवादी तुलसीदास, पृ. 139)

आगे के विवेचन में डॉ. त्रिपाठी उल्लिखित ध्वनिमैत्री के लिए अपनाए गए कौशलों का सोदाहरण विवेचन करते हैं। इन कौशलों के अंतर्गत ही ह्रस्व स्वरान्त पद प्रयोग और वर्णानुप्रास की छटा तुलसी की उल्लेखनीय विशेषता है। अनुप्रासों में खास तौर पर आनुनासिक ध्वनियों के आरोह-अवरोह गौर करने लायक है। उदाहरण के लिए "नील सरोरूह स्याम तरून अरून बारिज नयन'' अथवा "किंकिणि नूपुर धुनि सुनि'', "तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन चातक से'' अथवा "उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पंतग'' आदि से संबंधित पदों के ध्वनि सौंदर्य और तदनुसारी भाव सौंदर्य को देखा जा सकता है।

14.5.2 छंद और संगीत

मध्ययुग में मुक्त छंद का प्रचलन आरंभ नहीं हुआ था। कविता छंदोबद्ध होती थी। तुलसी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी और ब्रजभाषा के काव्यग्रंथों में प्रयुक्त छंदों के अच्छे जानकार थे। इसीलिए अपनी काव्यकृतियों में उन्होंने अभिप्रेत विषय-वस्तु और भाव के अनुसार विविध प्रकार के छंदों का उपयोग किया है। "छंद प्रबंध अनेक बिधाना''जैसी उक्ति के द्वारा छंदों के भेद और प्रकार के प्रति उन्होंने अपनी सजगता का संकेत भी दिया है। उनके साहित्यिक जीवनवृत्त और सृजन-प्रक्रिया के क्रम विकास से ऐसा प्रतीत होता है कि "रामचरितमानस'' की रचना से पहले एक ओर जहाँ अवधी के लोकगीतों में प्रचलित सोहर छंद का उपयोग कर वे "रामलला नहछू'' और "जानकी मंगल'' की रचना कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर अपभ्रंश काव्य परंपरा के जातीय छंद दोहा और चौपाई में "रामाज्ञा प्रश्न'' और "वैराग्य संदीपनी'' की भी रचना कर रहे थे। इन प्रयोगों से पता चलता है कि भाखा-काव्य के लिए अपेक्षित अंत:संगीत के अन्वेषण द्वारा वे अपने कौशल परिष्कृत कर रहे थे। जीवन की प्रौढ़ावस्था में ही "रामचरितमानस'' की रचना में वे अपने को समर्थ और सक्षम समझकर जुटे। संस्कृत से अवधी-ब्रज तक की काव्य संपदा के अनुशीलन से प्राप्त रचना विधियों और छंद कौशल का प्रमाण प्रस्तुत करने की दृष्टि से गोस्वामी जी के लिए यह जबर्दस्त चुनौती और आत्मपरीक्षा की अवधि थी। संस्कृत में भी वे काव्य सृजन कर सकते हैं और संस्कृत के वर्णिक तथा मात्रिक छंदों का साधिकार उपयोग कर सकते हैं। काशी के पंडितों को यह दिखलाना आवश्यक था। भाखा काव्य के प्रति "खल उपहास'' के बौद्धिक परिवेश से वे परिचित थे। वाल्मीकि, व्यास से लेकर भवभूति तक द्वारा उपयोग में लाए गए संस्कृत छंदों में वे अपनी रचनात्मक प्रतिभा के प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं, इसे सोदाहरण प्रस्तुत कर वे पंडित समाज में अपनी स्वीकृति चाहते थे ताकि यह बता सकें कि भाषा-काव्य किसी अज्ञानी गँवार की रचना नहीं है। इसीलिए संस्कृत श्लोकों, में अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजंग प्रयात

वृत्त, मालिनी वृत्त, वसंततलिका वृत्त, शार्दूल विक्रीड़ित वृत्त, वंशस्थ विलय वृत्त, स्रग्धरा छंद और नागर स्वरूपिणी वृत्त के उपयोग से गोस्वामी की रचनात्मक प्रतिभा के निखरे स्वरूप का दिग्दर्शन संभव हुआ।

रामचरितमानस के संस्कृत श्लोकों को छोड़कर शेष संपूर्ण महाकाव्य में दोहा-चौपाई और सोरठा में ही रचना की गई है, यद्यपि भावधारा और प्रसंग के अनुसार लय-गति-ताल का अनुसरण करते हुए हरिगीतिका, तोमर, अरिल्ल, त्रिभगी आदि छंदों के उपयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कार्य या घटना की पूर्णता पर कथाविन्यास में कड़ियाँ मिलाने के लिए मंथर गति से चलने वाले छंद के प्रयोगों में नई उद्भावनाओं के प्रमाण भी मिलते हैं। चरितकाव्यों की परंपरा में परखी जा चुकी कड़वक योजना का प्रभाव रामचरितमानस पर पर्याप्त रूप में परिलक्षित होता है। चरितकाव्यों पर शोध करने वाले डॉ. दीनानाथ शुक्ल की टिप्पणी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है - **''मानस में भी हमें संस्कृत काव्यों की सर्गनिबद्धता का नहीं प्रत्युत् कड़वक योजना का ही प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता है। इन कड़वकों में उपलब्ध होने वाली अर्द्धालियों की संख्या के लिए कोई निश्चित नियम न तो अपभ्रंश के महाकाव्यों में ही पाया जाता है और न रामचरितमानस में ही। ''पउमचरिउ'' की बारहवीं संधि में ही हमें कहीं आठ अद्धालियों का कड़वक दिखाई देता है, तो कहीं नौ का। मानस में भी आठ अर्द्धालियों से लेकर सोलह तक के कड़वक देखने को मिलते हैं।'' - (चरित काव्य की परंपरा और रामचरितमानस, पृ. 286)**

गोस्वामी जी की अन्य प्रमुख कृतियों में ''कवितावली'' और ''हनुमान बाहुक'' के प्रिय छंद कवित्त और सवैया है। ''रामाज्ञा प्रश्न'' और ''दोहावली'' में दोहा छंद, ''पार्वती मंगल'' और ''जानकी मंगल'' में मंगल, सोहर और हरिगीतिका छंद का उपयोग दिखाई देता है। ''विनय पत्रिका'', ''गीतावली'' और ''कृष्ण गीतावली'' में प्रगीत और मुक्तक के रचनातंत्र का प्रयोग है। पद शैली में रचित ये प्रगीत और मुक्तक कल्याण, गौरी, असावरी, भैरवी, केदारी धनाश्री, मल्हार, रामकली, टोड़ी, मारु, विलावल आदि राग-रागनियों में निबद्ध हैं। स्वामी हरिदास की संगीत परंपरा से रस-सिक्त गायन शैली का लाभ उठाते हुए और ब्रजभाषा की मँजी हुई प्रगीतात्मकता का निखार प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास ने संगीत के प्रति भी अपनी गहरी अभिरुचि और रागमयता का परिचय दिया है।

तानसेन, बैजू, स्वामी हरिदास, लाल खाँ आदि के द्वारा भारतीय संगीत परंपरा का परिष्कार हुआ, उसे नया रूप मिला। हिन्दुस्तानी संगीत की इस लोकाश्रित जातीय परंपरा के विकास में हिन्दू-मुस्लिम संगीतकार योग दे रहे थे। बारहवीं-तेरहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक संतों, सूफियों और भक्तों के पदों की गायन परंपरा पर संगीत के राग और ताल की गहरी छाप है। यह मूलत: लोकसंगीत है जिसे कभी-कभी मुगल दाबार में या हिंदू-मुस्लिम रियासतों में भी आश्रय प्राप्त हो जाता था। आचार्य शुक्ल सूरदास के प्रसंग में पहले से चली आ रही जिस गीत परंपरा का उल्लेख करते हैं, वह वस्तुत: सिर्फ ब्रजभाषा में ही नहीं है, मैथिली, अवधी, खड़ी बोली, पंजाबी, मराठी, बंगला, आदि में भी है और इस गीत परंपरा का जातीय लोकसंगीत के रूप में अलग-अलग प्रसार हो रहा था। रामविलास शर्मा का अनुमान है **''संतों के पद लोकगीतों का विकास है। दक्षिण की शास्त्रीय पद्धति के गायक त्यागराज और पुरंदरदास के पद गाते हैं, उत्तर की शास्त्रीय पद्धति के गायक सूर, तुलसी और मीरा के पद गाते हैं। यही नहीं, कुछ गायिकाएँ शास्त्रीय गायन का समापन कजरी या किसी अन्य संगीत से करती हैं और वादक भी अपने शास्त्रीय वादन का समापन कभी किसी लोकधुन से करते हैं। इस तरह वे उस आदि स्रोत को याद कर लेते हैं जिसने संतों के गायन और शास्त्रीय गायन दोनों को जन्म दिया था।'' (भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ. 190)**

तुलसी की सभी कृतियों में कथागायन का लोकरूप, डॉ. रमेश कुंतल मेघ के विश्लेषण के अनुसार चित्रकूट के परिवेश से ही आया है। उनके अनुसार **''चूँकि चित्रकूट राम की उपासना में वृंदावन की तरह है, अत: कीर्तनियों की भिन्न-भिन्न मंडलियों द्वारा राम के भजन और राम के लीलागान की परंपरा आज तक चली आ रही है। कहना न होगा कि गोस्वामी जी के जीवन के इस वृत्त में चित्रकूट के संपर्क ने तुलसी के सृजनकार्य तथा कवित्स को गढ़ा है।'' (तुलसी : आधुनिक वातायन से, पृ. 154)**

14.5.3 काव्य का रूप विधान

तुलसी ने मध्यकाल में प्रचलित काव्य सृष्टि के तीनों रूप विधानों - प्रबंध, मुक्तक और प्रगीत को अपनाया। कथा वर्णन की परिपाटी में अपना काव्य लेखन आरंभ करने के पहले गोस्वामी जी फुटकर मुक्तक और पदावली में उपलब्ध संत काव्य की परंपरा की ओर आकृष्ट हुए थे। रत्नावली से दुत्कारे जाने के बाद जब उन्हें लौकिक-पारिवारिक गृहस्थ जीवन से विरक्ति हुई तो संतों की वैराग्य-प्रधान रचनाओं में ही उन्हें आत्माभिव्यक्ति दिखाई पड़ी। ऐसा माना जाता है कि ''वैराग्य संदीपनी'' के पद निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना, जीवन की क्षण-भंगुरता और इंद्रियार्थ निषेध से भरे पड़े हैं। यह मात्र संयोग नहीं है कि तुलसीदास पश्चिमी ब्रजभाषा में अपनी रचना आरंभ करते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद लिया जा सकता है, जो ''वैराग्य संदीपनी'' से उद्धृत तीसरा पद माना जाता है-

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु रसना बिनु रस लेत।
बास नासिक बिनु लहै परसै बिना निकेत।।

अपनी इस प्रारंभिक रचना में भी वे हरिकथा और रामकथा के अंतर्गत ही इन पदों की रचना कर रहे थे। ''वैराग्य संदीपनी'' के पद 38 और 40 में आयी निम्नांकित उक्तियाँ ध्यान देने लायक हैं-

(1) **तुलसी भगत सुपच भलौ भजै रैन दिन राम।**
ऊंचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम।।

(2) **जदपि साधु सब ही बिधि हीना। तदपि समता के न कुलीना।।**

सुपच (श्वपच, चांडाल) और कुलीन में तथा साधु और कुलीन में तुलसी चांडाल और साधु को ऊंचा स्थान देते हैं। तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ पंडित राम नरेश त्रिपाठी की दृष्टि में **''तुलसीदास की सबसे पहली रचना ''वैराग्य संदीपनी'' जान पड़ती है। यह उस समय की रचना है जब तुलसीदास का झुकाव संतमत की तरफ रहा होगा। संतमत का प्रचार उन दिनों जोरों पर था।'' (तुलसीदास और उनका काव्य, पृ. 223)**

''वैराग्य संदीपनी'' के दोहे और कबीर की साखियों में काफी साम्य दिखाई देता है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त भी प्रकारान्तर से इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए यह कहते हैं कि **''इसकी शैली और विचारधारा तुलसीदास की ज्ञात रचनाओं से भिन्न है।'' (हिंदी साहित्य कोश, खंड 2, पृ. 553)** निष्कर्ष यह कि स्वतंत्र मुक्तक रचनाविधिका रूपबंध प्रारंभ में ही गोस्वामी जी को अपनी प्रतिभा के संचरण के लिहाज से उपयुक्त प्रतीत हुआ। विभिन्न छंदों में मुक्तक रचना की इस प्रणाली का उपयोग उनके संपूर्ण कृतित्व में प्रारंभ से अंत तक दिखाई पड़ता है - ''वैराग्य संदीपनी'' से लेकर ''कवितावली'' और ''हनुमान बाहुक'' तक में।

''रामलला नहछू'', ''जानकी मंगल'', ''पार्वती मंगल'' आदि में राम कथा के कुछ घटना प्रसंगों को वर्णन की आधारभूत सामग्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहना चाहिए कि मुक्तक और आख्यान के मिश्रित रूपबंध में प्रस्तुत इन काव्य-कृतियों में युवा रचनाकार की प्रयोगशीलता बरबस संत काव्य परंपरा से भिन्न नये आस्वाद का परिचय देती है। राम के यज्ञोपवीत और विवाह संस्कार के कथासंदर्भ में गाये जाने वाले मंगल-गीतों के रूप में इन काव्य-कृतियों की रचना की गई है। ''रामलला नहछू'' में लोहारिन, अहीरिन, तंबोलिन, दरजिन, मोचिन, मालिन आदि का रूपचित्रण किया गया है। नाइन निछावर माँग रही है, हठ और झगड़ा कर रही है। संपूर्ण वस्तुविधान अवध, भोजपुर क्षेत्र और मिथिला के लोकरिवाजों को सामने लाता है और इसके लिए लोकगीतों की सहज-सरल रोचक शैली अपनायी गयी है। कथावस्तु की दृष्टि से भिन्नता यह है कि दशरथ ग्रामीण स्त्रियों, खासकर, निम्न कुल की स्त्रियों के रूपयौवन पर मुग्ध और आसक्त दिखाए गए हैं। मर्यादावादी तुलसी उत्तान शृंगार का ऐसा वर्णन करें, और वह भी अपने उपास्यदेव के परमपूज्य पिताश्री के चरित्र का स्खलन दिखाते हुए - यह सर्वथा अविश्वसनीय मान लिया गया और इसी के आधार पर अनेक विद्वानों ने ''रामलला नहछू'' को

प्रामाणिक कृति मानने से इन्कार कर दिया। अद्यतन शोधकार्यों के आधार पर अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि यह गोस्वामी जी की ही कृति है। दरअस्ल ये तीनों कृतियाँ अवधी में लिखी गई हैं और इन पर लोक संस्कृति की गहरी छाप है। राम के प्रति तुलसी की अनन्य भक्ति की विकास प्रक्रिया में तथा एक समर्थ रचनाकार की संभावनाशील यथार्थ दृष्टि के स्वरूप ग्रहण की प्रक्रिया में दशरथ का ऐसा चित्रण "रामचरितमानस" से पहले का एक पड़ाव प्रतीत होता है। मुक्तक और आख्यान की घुली-मिली वर्णन शैली में नाटकीय त्वरा और गति संबंधी ये ऐसे प्रयोग हैं जो ग्रामीण लोक जीवन के प्रेक्षण पर आधारित हैं। "जानकी मंगल" में निबद्ध कथा यह बताती है कि अब गोस्वामी जी "रामचरितमानस" की रचना के लिए आवश्यक तैयारी पूरी कर चुके हैं।

"रामचरितमानस" के रूप विधान, प्रबंधत्व और महाकाव्यत्व पर चर्चा इस टिप्पणी के अंत में की जाएगी। इस बीच यह देखना आवश्यक है कि मानस के बाद लिखित रचनाओं में "पार्वती मंगल" का रूप विधान क्या है? यह एक प्रबंधकाव्य है। इसे हम खंडकाव्य या कथा प्रबंध की संज्ञा दे सकते हैं। इसमें शिव-पार्वती विवाह का आख्यान है। माता प्रसाद गुप्त इसे खंड काव्य मानते हैं।

प्रबंध काव्य के लिए अपेक्षित वर्णनात्मकता की काव्य प्रतिभा का अब पूर्ण प्रस्फुटन हो चुका है। अत: "रामचरितमानस" में वर्णित शिव-पार्वती विवाह के घटना-संयोजनों में गोस्वामी जी एक भिन्नता लाते हैं। जाहिर है कि मानस में यह आख्यान शिवपुराण पर आधारित है, जबकि पार्वती मंगल में कालिदास के "कुमारसंभव" में उपलब्ध कथा-विन्यास का उपयोग किया गया है। मानस में तो जब राम बीच में पड़ते हैं, तभी पार्वती से विवाह के लिए शिव राजी होते हैं, जबकि पार्वती मंगल में राम बीच में नहीं पड़ते। पार्वती की तपस्या से शिव स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं और बटु रूप में जाकर पार्वती की परीक्षा लेते हैं। मानस में सप्तर्षि और पार्वती के बीच संवाद की योजना करायी गयी है, जबकि पार्वती मंगल में बटु और पार्वती के बीच। सोहर और हरिगीतिका छंदों में इसकी रचना की गई है।

कथा प्रबंध में कमश: सफलता पाते जाने की प्रक्रिया में गोस्वामी जी "बरवै रामायण" नाम से 69 स्फुट पदों के संग्रह द्वारा "कवितावली" की ही तरह सात कांडों में कथा का विभाजन करते हैं। बरवै अवधी का प्रिय छंद है। इसकी गति और क्षिप्रता पर तुलसीदास की महारत देखने लायक है। रूप विधान की दृष्टि से कुछ आलोचक इसे मुक्तक रचना-संग्रह भी मानते हैं और कुछ इसे खंडकाव्य बताते हैं। वस्तुत: "बरवै रामाण" "रामचरितमानस" का ही लघु गुटका संस्करण है, यद्यपि भाषा और छंद की दृष्टि से इस रचना की अपनी विशिष्टताएं हैं। अपने मित्र अर्ब्दुरहीम खानखाना की प्रेरणा से तुलसी ने बरवै छंद में रामकथा को संक्षेप में प्रस्तुत करने के दायित्व को कलात्मक चुनौती के साथ स्वीकार किया था। माना जाता है कि 1612 ई. में इसकी रचना हुई थी अर्थात् मानस की रचना के काफी बाद।

उल्लेखनीय कृतियों में अब "गीतावली" और "विनय पत्रिका" पर विचार करना आवश्यक है। ये दोनों ही कृतियाँ आत्मनिवेदन से लबालब गेय पद हैं। इनका रचनातंत्र भक्तिकाल के प्रारंभिक दौर की रचनाशीलता से अनुशासित है और तत्कालीन उत्तरी भारत के जनपदों में प्रचलित लोकसंगीत की टकसाल में ढल कर इसका पदविन्यास निखर उठा है।

14.5.4 रामचरितमानस का रूप विधान

"रामचरितमानस" अपनी प्रबंधात्मकता और आख्यान के रूप विधान की दृष्टि से महाकाव्य के रूप में लगभग सर्वस्वीकृत है, यद्यपि अनेक विद्वानों ने इसे पुराण काव्य भी कहा है। तुलसी ने इस रचना का रूपबंध ऐसा बनाया है कि हिंदी भाषी क्षेत्र के प्राय: सभी जनपदों में यह गाया जाता है और गाकर सुनाया जाता है। इस महाकाव्य के श्रोता और इसके आधार पर होने वाली रामलीलाओं के दर्शक श्रद्धा के विवश होकर पौराणिक कथा में प्रयुक्त चमत्कारों के प्रति अपने अविश्वास को स्थगित कर देते हैं, चूंकि तुलसी ने अपने नायक में ही अलौकिकता और सर्वशक्तिमानता की प्रतिष्ठा कर दी है। गोस्वामी जी के इस चरितनायक का लौकिक-सामाजिक जीवन प्रसंग इतना विराट है कि ताड़का, वाल्मीकि, अहिल्या, केवट, निषाद, जटायु, सम्पाती, सुमंत्र आदि सब के सब कथानक के फलक पर सर्वशक्तिमान और अलौकिक के सहज मानवीय व्यापार में शामिल हो जाते हैं। वस्तुत: ये सभी किसी न किसी

प्रासंगिक कथानक के अनिवार्य अंग हैं। आधिकारिक और प्रासंगिक कथानकों के बीच आख्यान और इतिवृत्त जैसा संबंध है। इस संबंध को दिखाने के लिए अनेक स्थलों पर काल भी एक ही रखा गया है। कथानकों के बीच संबंधों से घटनाओं में जो मोड़ आता है अर्थात् आकस्मिकता आती है उसे दैव विधान और प्रारब्ध की तार्किकता से विश्वसनीय तथा कुतूहलवर्द्धक बनाया गया है। चित्रपटल के ऐसे आकस्मिक परिवर्तनों के लिए प्रारंभ से अंत तक जिन युक्तियों का आश्रय लिया गया है उनमें शंका और समाधान की प्रश्नोत्तर शैली, अवतारी महापुरुष का अतिप्राकृतिक दिव्य शक्ति का प्रदर्शन तथा कुछ पात्रों के पूर्वजन्म की कथा का वाचन आदि कौशल द्रष्टव्य है। बालकांड में बतौर पृष्ठभूमि शिवचरित, नारद शाप, मनु-शतरूपा, प्रतापभानु-कपटी मुनि, जलंधर-वृन्दा, रावण चरित आदि प्रासंगिक कथा इकाइयों के नियोजन में पुराणों की आख्यान शैली का अनुसरण है। इसी तरह रामचरितमानस के अन्य सर्गों में सम्पति, लंकिनी, राक्षसी, काक्भुशंडि आदि के निजी आत्मवृत्त भी मिथकीय कोटि के ही हैं। गोस्वामी जी ने कथाविन्यास की इस संरचना के लिए पुराणों के अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, कुमारसंभव तथा पउमचरिउ जैसी चरितकाव्य परंपरा में लिखित रामायणों के प्रबंध कौशल को फेरबदल कर दोहराया है। डॉ. रमेश कुंतल मेघ मानते हैं कि "इनमें निःसंदेह प्रबंध सौष्ठव विफल हुआ है।" (तुलसीदास : आधुनिक वातायन से, पृ. 193)

आधिकारिक कथा के घटनाविकास के अंतर्गत वर्णित अनेक घटनाएं परवर्ती कथावाचन के बीच लगभग पूरी की पूरी दोहरायी जाती हैं, केवल सूच्य बनकर नहीं आतीं। ऐसी आवृत्ति के द्वारा कालविपर्यय होता है, अर्थात् वर्तमान के बीच विगत् आ खड़ा होता है बल्कि वर्तमान को धुंधला कर देता है। उदाहरण के लिए - दशरथ की सभा में दूत द्वारा धनुर्भंग की पूरी घटना की इतिवृत्तात्मक आवृत्ति, मारीच द्वारा रावण को दी गई सूचना के अंतर्गत विश्वमित्र के साथ राम के प्रस्थान का प्रसंग, विवाह के बाद लौटे राम से ताड़का वध की कथा का माताओं द्वारा श्रवण। शिव पार्वती विवाह, रति को दिये गये वरदान, शिव द्वारा पार्वती को सुनायी गयी रामकथा की काक्भुशुंडि द्वारा गरूड़ को सुनायी गयी कथा में आवृत्ति - कथा विन्यास की तकनीक में ऐसे अनेक स्खलन हैं जो रामचरितमानस के महाकाव्यात्मक प्रभाव को बाधित करते हैं और सौंदर्यात्मक संवेग की त्वरा को कुंठित करते हैं। कथा की जीवंतता, सुश्रृंखलन और व्यवस्थापन के मार्ग में अनेक स्थलों पर स्तुतिपरक, उपदेशात्मक और ब्रह्मचिंतन के तात्विक प्रसंग आते हैं कि उनसे कथा प्रवाह बार-बार खंडित होकर शिथिल पड़ जाता है। ऋषियों, मुनियों और भक्तों से जब भी राम की भेंट होती है तो गोस्वामी जी अटक-भटक कर कथा की गति में अनावश्यक व्यतिकम कर देते हैं। वनगमन के समय राम और वाल्मीकि संवाद ऐसे ही व्यतिकम के अनेक उदाहरणों में से एक है।

मानस के सात सोपानों तथा चार घाटों की व्याख्या से तुलसी साहित्य संबंधी समालोचना और शोधकृतियाँ भरी पड़ी हैं। मानस को धर्मग्रंथ या भक्ति सरोवर के रूप में प्रस्तुत करने वाले विद्वानों ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। "मानस में रामकथा" नामक अपनी समालोचनात्मक कृति के माध्यम से पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र ने भी इस प्रकार की विवेचन पद्धति को गंभीर ज्ञानचर्चा का रूप दे दिया। विद्वानों के बीच इस प्रसंग को लेकर इतनी प्रतिद्वंद्विता बढ़ी कि डॉ. उदयभानु सिंह मानस के सोपान की व्याख्या और कथा संरचना के प्रश्नों के बीच घालमेल करते हैं। उनके अनुसार ये सात सोपान रामभक्ति के सात पंथ हैं और **"मानस भक्तिजल से लबालब भरा है। पहले ही सोपान के आरंभ से भक्तिरस मिलने लगता है। पाठक ज्यों-ज्यों गहराई में उतरता जाता है त्यों-त्यों भक्तिजल में प्रवेश करता जाता है और सातवें सोपान पर पहुँचकर वह भक्तिरस में पूर्णतः मग्न हो जाता है।" (रामचरितमानस, संपादक सुधाकर पांडेय, पृ. 153)**। यद्यपि अच्छी बात यह है कि काक्भुशुंडि संवाद को उपासना घाट, शिव पार्वती संवाद को ज्ञानघाट-राजघाट, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद को कर्मघाट-पंचायती घाट और तुलसी-संत संवाद को प्रपत्तिघाट-गायघाट के रूप में देखने-दिखाने वाली विवेचना पद्धति से डॉ. उदयभानु ने अपनी असहमति जताते हुए इसकी व्यर्थता बतायी है। पर कथा प्रवचन परंपरा के अद्यतन आचार्य पंडित रामकिंकर उपाध्याय इन चार संवादों और मानस के चार घाटों की आध्यात्मिक और भक्तिरसमय व्याख्या से अभी भी जनसाधारण को चमत्कृत करते हैं। उनका निष्कर्ष है **"रामचरितमानस के राम ज्ञानियों के परब्रह्म परमात्मा हैं। भक्तों के सगुण साकार ईश्वर हैं। कर्ममार्ग के अनुयायियों के लिए महान मार्गदर्शक और दीनों के लिए दीनबंधु हैं। चार**

घाटों के माध्यम से रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने सारे समाज के व्यक्तियों को आमंत्रण दिया कि वे श्रीराम के चरित्र से अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लें।" (मानसमुक्तावली, खंड 1, पृ. 167)

रामचरितमानस की कला संरचना में चार वक्ता और चार श्रोता के अलग-अलग स्थान, उनकी अलग-अलग प्रकार की लौकिक-सामाजिक अस्मिता तथा इनकी पृथक-पृथक कथाओं में अंतर्भूत उपादानों की परस्पर भिन्नता के आधार पर कलात्मक और सौंदर्यपरक व्याख्या प्रायः नहीं हुई है। इस व्याख्या पर धार्मिक और आध्यात्मिक रंग चढ़ाने में कथावाचकों का जितना योगदान है, उससे कहीं अधिक साहित्य के विद्वानों का ही योगदान है।

तथ्य की दृष्टि से यह सर्वविदित है कि अध्यात्म रामायण, काकभुशुंडि रामायण आदि से तुलसी ने शिव पार्वती और काक गरूड़ संवाद की पद्धति अपनायी है। पर इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण उस कलात्मक आवश्यकता का विवेचन हमारे विद्वान समालोचकगण भूल गए जिसके निर्णायक दबाव में उनकी संपूर्ण रचनाशीलता अनुशासित-अनुकूलित हो रही थी। तत्कालीन जनसमाज और सहृदय समुदाय की ऐतिहासिक पुनर्रचना कर यदि हम सोचें तो पता चलेगा कि गोस्वामी जी साक्षर समुदाय के लिए किसी साहित्यिक पाठ की रचना न कर, निरक्षर जनसाधारण को गाकर सुनायी जाने वाली कथाकृति या कथाप्रबंध की रचना कर रहे थे। रामचरितमानस की हस्तलिखित पोथियों से रामकथा काव्य का थोड़ा-बहुत प्रसार सिर्फ शिक्षित-कुलीन समाज में हो रहा होगा। पर एक कृतिकार के नाते गोस्वामी जी अपने कथाप्रबंध, गाथा या गाहा का पाठ कथा प्रवचन, लोक गायन और लीला गान सुनने वाले सहृदय श्रोता समाज के लिए तैयार कर रहे थे। नाटक-नृत्य-संगीत की समवेत विधा के रूप में अगर रामलीला तुलसी से पहले किसी भी रूप में अयोध्या और चित्रकूट में रही होगी तो तुलसी की रचनाशीलता पर जिस प्रकार की छाप पड़ी होगी, उसकी कल्पना की जा सकती है।

इस पृष्ठभूमि में रामचरितमानस के लोकरंजनकारी वाचिक पाठ के रूप विधान पर विचार न करना और सिर्फ लिखित पाठ के साहित्यिक कलेवर के रचनातंत्र पर विचार करना अपर्याप्त प्रतीत होता है। इन दोनों पक्षों पर गौर करने से ही यह पता चलता है कि हर **सर्ग** के नामकरण में **कांड** क्यों आया है। एक महागाथा के अलग-अलग कांड सीरियलों की धारावाहिकता और परस्पर पृथक घटनागाथा जैसे प्रतीत होते हैं। संस्कृत और अपभ्रंश की प्रबंधकाव्य परंपरा के अनुसार सर्गों का विधान जहाँ लिखित पाठ का वैशिष्ट्य है, वहीं विभिन्न वाचिक आख्यान के सूचक हैं।

मध्यकाल के हिंदी भाषी क्षेत्र में संतों की गायी जाने वाली बानियाँ और पदावलियाँ, कृष्ण-भक्तों की रासलीला और राम-भक्तों की रामलीला विभिन्न जनपदों के सांस्कृतिक जीवन स्पंदन की ठोस अभिव्यक्तियाँ हैं। उस युग का कोई भी रचनाकार इनसे कटकर या अप्रभावित रहकर जीवंत रचना कर ही नहीं सकता था। उस युग के किसान-विद्रोहों और धार्मिक-आध्यात्मिक ात लिए सांस्कृतिक क्रियाकलापों के बीच के अर्थपूर्ण संबंधों की वैज्ञानिक व्याख्या से ही यह समझ में आता है कि नृत्य, गायन, कविता में यथार्थ की उत्पीड़नकारी दुनिया को क्यों खारिज किया जा रहा था - वास्तविक संसार के बीच निरूपायता कलात्मक दुनिया में मनोवांछित क्रीड़ा के दृश्यरूपकों की निर्मितियाँ प्रस्तुत कर रही थी - कभी वीतराग होकर, कभी आनन्ददायी लीला के नृत्य में तल्लीन होकर, कभी पराक्रमी नायक की प्रतिष्ठा के गीत गाकर। यह मनचाही क्रीड़ा अनुभूतियों का एक साझा तानाबाना प्रदान करती थी, अपने साथियों से साहचर्य और हिस्सेदारी के लिए अपेक्षित समान संवेदनाओं का यह भावजगत लोकख्यात नायक के अतिप्राकृतिक चमत्कारों के कारण जनजन के हृदयकुंज में आशा का प्रदीप जलाकर जगमगा उठता था। मध्यकाल के निरंकुश सामंती शासन, मनसबदारी-जागीरदारी व्यवस्था और भूराजस्व के नये रूपों के विरुद्ध थे। किसान-विद्रोहों में संघर्ष के कारगर औजार के रूप में उत्पीड़ितों के पारस्परिक साहचर्य की यह आवश्यकता गीत, गायन, कविता, नाटक, लीला आदि को भी अपने रंगों में ढाल रही थी। भक्ति के प्रतीक-रूपकों से आवृत्त इस भावधारा की परस्पर-विरोधी गूंज-अनुगूंज को नये सिरे से समझने की आवश्यकता है। दरअसल दुःख दैन्य से मुक्ति दिलाने वाले अपने युग के नायक की खोज तुलसीदास को जनमन में बसे लोकख्यात वृत्त की ओर ले जाती है। एक सृजनशील कृतिकार के नाते अपने चरितनायक को जिस विचारभूमि पर वे प्रतिष्ठित करते हैं, उससे उनकी वैचारिक सीमा और असंगतियों के साथ-साथ उनकी महान कलात्मक प्रतिभा और गहरी संवेदनशीलता का भी परिचय

मिलता है। "रामचरितमानस" इस दृष्टि से गोस्वामी जी की प्रतिनिधि रचना है। हिंदी भाषी जनता को यह जातीय महाकाव्य जनजन का कंठहार क्यों बना हुआ है? इसके काव्यरूप और प्रबंधत्व की कलात्मक विशेषताएं क्या हैं? इन प्रश्नों पर काव्यशास्त्रीय मानदंडों के अनुसार विद्वान आलोचकों ने बहुत विस्तार से विचार किया है और सभी इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि लोकख्यात वृत्त, सर्गबद्ध कथा, धीरोदात्त नायक की प्रतिष्ठा, विराट जीवन संदर्भ, लोकमंगल के आदर्श, अन्याय पर न्याय की विजय, रस व्यंजना में वैविध्य, सहज-सुगम भाषा शैली, कथा विन्यास में आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक-पताका-प्रकरी कथाओं के कलात्मक संग्रथन, मार्मिक स्थलों की पहचान, विभावन व्यापार में दृश्यात्मकता, प्रभावोत्पादक सादृश्य योजना, अलंकार विधान में अनुभवगम्य विस्तार, नैतिक आदर्शों के संदेह आदि के सफल कलात्मक संयोजन के कारण रामचरितमानस एक अद्वितीय महाकाव्यात्मक कृति है।

14.6 सारांश

इस इकाई में आपने एक कवि के रूप में तुलसीदास की विशेषताओं और सीमाओं की जानकारी प्राप्त की। तुलसी एक बड़े कवि हैं। उनके विचारों से असहमत हुआ जा सकता है परंतु उन्होंने अपनी कविता में जीवन के प्रसंगों का मार्मिक, सूक्ष्म और जीवन्त चित्रण किया है। जनभाषा अवधी को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। उन्होंने जीवन के कई पक्षों का इतना हृदयस्पर्शी चित्रण किया है कि पाठक भाव-विभोर हो जाते हैं। रामचरितमानस के एक-एक प्रसंग को पढ़कर पाठक सुध-बुध खो बैठते हैं। हाँ, जहाँ-जहाँ ब्रह्म और दर्शन का उल्लेख होता है वहाँ-वहाँ कथा-रस अवश्य बाधित होता है। कुल मिलाकर रामचरितमानस एक अद्वितीय महाकाव्यात्मक कृति है।

14.7 अभ्यास/प्रश्न

(1) "प्रबंधकार कवि की भावकुता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सकता है या नहीं।" तुलसीदास कृत रामचरितमानस के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के उक्त कथन का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

(2) तुलसी की कविता में चित्रित जीवन फलक का विवेचन कीजिए।

(3) तुलसी की भाषा पर विचार कीजिए।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

गोस्वामी तुलसीदास,	:	रामचंद्र शुक्ल नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य	:	मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
मीरा का काव्य	:	विश्वनाथ त्रिपाठी दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड
लोकवादी तुलसीदास	:	विश्वनाथ त्रिपाठी राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
सूरदास	:	रामचंद्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी, वाराणसी
त्रिवेणी	:	रामचंद्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी